IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 23, Issue 2, Ver. 6 (February. 2018) PP 65-70
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

''भक्ति आन्दोलन व लोक जागरण''

संतोष कुमार यादव (हिन्दी)
शासकीय श्यामा प्र0मुखर्जी महा0
सीतापुर,जिला– सरगुजा छ0ग0

सारांश –

भक्ति आंदोलन व लोक जागरण के उद्‌भव के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव –गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशामें अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीति उलटफेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?

धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और व्यक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलांग रहता है। कर्म के बिना वह लूला लंगड़ा , ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना हृदयविहीन क्या निष्प्राण रहता है। कर्म और भक्ति ही सारे जन समुदाय की सम्पत्ति होती है। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति : जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था।कहीं – कहीं दबती, कहीं –कहीं उभरती किसी प्रकार चली भर आ रही थी। इसी दशा की ओर लक्ष्य करके गोस्वामी तुलसी दास ने कहा था –

''गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।''

जिस समय मुसलमान भारत में आए उस समय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति जगाने लगे।भक्ति का जो श्रोता दक्षिण की ओर से धीरे –धीरे उत्तर भारत कीओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीति परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदयक्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे –धीरे लोक प्रचलित भाषाएं भक्ति – भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयी और कालान्तर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़ सी आ गयी ।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण भारत में आलवारों एवं नायनारों से हुआ जो कालान्तर में (800 ई. से 1700 ई. के बीच) उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में फैल गया। इस हिन्दू क्रांतिकारी अभियान के नेता शंकराचार्य थे जो एक महान विचारक और जाने माने दार्शनिक रहे। इस अभियान को चैतन्य महाप्रभु , नामदेव, तुकाराम, जयदेव ने और अधिक मुखरता प्रदान की। इस अभियान की प्रमुख उपलब्धि पूर्ति पूजा को समाप्त करना रहा। भक्ति आंदोलन के नेता रामानंद ने राम को भगवान के रूप में लेकर इसे केन्द्रित किया। उन्होंने सिखाया कि भगवान राम सर्वोच्च भगवान हैं, केवल उनके प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से तथा उने पवित्र नाम को बार – बार उच्चारित से ही मुक्ति पाई जाती है।

चैतन्य महाप्रभु एक पवित्र हिन्दू भिक्षु और समाज सुधारक थे तथा वे 16वीं शताब्दी के दौरान बंगाल में हुए भगवान के प्रति प्रेम भाव रखने के प्रबल समर्थक , भक्ति योग के प्रवर्तक , चैतन्य ने ईश्वर की आराधना, श्रीकृष्ण के रूप में की। श्री रामानुजाचार्य भारतीय दर्शनशास्त्री थे और उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैष्णव संत के रूप में मान्यता दी गई है। रामानंद ने उत्तर भारत में जो किया वही रामानुज ने दक्षिण भारत में किया। उन्होंने रूढ़िवादी कुविचार की बढ़ती औपचारिकता के विरूद्ध आवाज उठाई और प्रेम तथा समर्पण की नींव पर आधारित वैष्णव विचार धारा के सम्प्रदाय की स्थापना की।भक्तिकालीन काव्य भारतीयता की पहचान का काव्य है।भक्तिकाल के सूत्र भक्ति आंदोलन में निहित हैं। भक्ति की लहर दक्षिण से उत्तर भारत में आई कबीर ने कहा है –

''भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लो रामानंद।
परगट किया कबीर ने, सप्त दीप नवखंड।।''

भक्ति की परिभाषा – विभिन्न विद्वानों द्वारा भक्ति की ये परिभाषाएं दी गई हैं –

1. **श्रीमदभागवत्‌गीता –**

''मय्यर्पित मनोबुद्धियों मद्भक्तः स मे प्रियः '' अर्थात जिसने अपना मन और बुद्धि मुझे अर्पित कर दी वह भक्त मुझे प्रिय है। (अ. 12/14)

2. पाराशरतः –

''पूजादिविष्वनुराग इति पाराशर्यः''अर्थात पूजादि में अनुराग होना भक्ति है।(ना.म.सू. 16)

3. गर्गाचार्य –

''कथादिष्वतु गर्गः'' अर्थात भगवान की कथादि में अनुराग होना।(ना.म.सू. 17)

4. शांडिल्य –

''सा परानुरक्तिरीश्वरे'' अर्थात वह ईश्वर के प्रति परम अनुराग रूपा है। (शा.म.सू.2)

5. नारदः –

'' सा त्वस्मिन परम प्रेम –रूप अमृत स्वरूपा च । तत्रापि माहात्म्य ज्ञान विस्मृत्यपवादः तद्विहीनं नाराणामिवः।'' अर्थात् वह (शक्ति) ईश्वर के प्रति परम –रूपा और अमृत स्वरूपा है। फिर भी माहात्म्य ज्ञान का विस्मरण नहीं होना चाहिए अन्यथा वह व्यभिचारियों के प्रेम – तुल्य हो जाएगी। (ना.म.सू. 2–3)।

6. वल्लभाचार्य –

''माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ःसर्वबोधिकः स्नेहो भक्तिरीति प्रोक्स्तया, मुक्तिर्नचान्यथा।''

अर्थात् भगवान में माहात्म्य – पूर्वक सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सर उपाय नहीं है। (तत्वदीप – निबंधः श्लोक 46)

उपर्युक्त परिभाषाओं में शाब्दिक दृष्टि से अन्तर होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त एकता है। गीताकार ने ह्रदय और बुद्धि दोनों का समर्पण स्वीकार किया है, ह्रदय का समर्पण प्रेम से और बुद्धि का महत्ता के बोध से होता है। इस प्रकार आधुनिक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा –''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है'' – में उपर्युक्त सभी मतों का समन्वय हो जाता है।

भक्ति की दो धाराएं प्रवाहित हुई – निर्गुण धारा और सगुण धारा। निर्गुण और सगुण मतवाद का अन्तर अवतार एवं लीला की दो अवधारणाओं को लेकर है। निर्गुण मत के ईष्ट भी कृपालु, सह्रदय, दयवान, करूणाकर हैं वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त हैं किन्तु वे न अवतार ग्रहण करते हैं और न लीला। वे निराकार हैं, सगुण मत के ईष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं, साधुओं की रक्षा करते हैं और अपनी लीला से भक्तों के चित का रंजन करते हैं। अतः सगुण मत में विष्णु 24 अवतारों में से अनेक की उपासना होती है जिसमें सर्वाधिक लोकप्रिय और लोक –पूजित अवतार राम एवं कृष्ण हैं।

भक्ति आंदोलन

''भक्ति'' का अर्थ है – सेवा करना, सेवा प्रकार , भगवान की सेवा। शाण्डिल्य ने कहा है कि ''सापरानुरक्तिरीश्वरे'' – अर्थात् ''उसने (ईश्वर में) परम अनुरक्ति ही भक्ति है। '' श्रीमद्भागवत में भक्ति का लक्षण बताते हुए लिखा है कि ''मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति हो, कामना – रहित भक्ति जो निरंतर बनी रहे, ऐसी भक्ति से ह्रदय आनन्दस्वरूप भगवान को प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाता है। '' भक्ति की जो अनेक परिभाषाएं दी गई हैं उनमें इसके दो मुख्य लक्षणों पर बल दिया गया है– 1 ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम और 2. सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य। सन्तों –भक्तों और सूफियों ने प्रेम और वैराग्य को सर्वोपरि महत्व दिया है। **''सियाराममय सब जग जानी '' '' तीन लोक चौदह खंड सबै परै मोहिं सुझि। प्रेम छांडि किछु और न लोकना नौ देखा मन बूझि।।''(1)** मान्यताओं से भक्तों ने सृष्टि के कण –कण में ईश्वर के प्रेम और सौन्दर्य के दर्शन किए हैं। ये भक्त प्रतीति के साथ नीति को भी अत्यावश्यक मानते हैं–

''प्रीति राम जों नीति – पथ चलियराग– रस जीति।
कुलसी सन्तन के मते इहै भगति की रीति।। (2)

भक्ति –सेवा परहित और लोकमंगल को भक्ति ने अपनी ''भक्ति'' का पर्यायवाचक बना लिया है – **''परहित सरिस धरम नहीं भाई।''**

इस भक्ति – पंथ के प्रथम आचार्य रामानुजाचार्य है, उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध की एक विशिष्ट द्वैतवादी व्याख्या प्रस्तुत की। भक्ति धर्म के प्रथम आचार्य रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध किया। रामानुज ने जीव एवं भगवान् का भेद वास्तविक माना। शंकर ने जगत् को असत्य माना था और रामानुज ने सत्य, शंकर परम तत्व को निर्गुण मानते थे और रामानुज सगुण। रामानुज ने नीच जातियों में प्रचलित ऐकान्तिक भक्ति का बहुमान दिया। रामानुज के अनन्तर मध्वाचार्य , विष्णुस्वामी और निम्बाकाचार्य हुए और इन्होंने अपनी –अपनी दार्शनिक स्थापनाएं प्रस्तुत की। ये आचार्य आलवारें के ही अनुयायी

वैष्णव श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य आलवारों की शिष्य परम्परा में है। वे मर्यादा के बड़े जबरदस्त पक्षपाती थे। इन्हीं की चौथी या पांचवी शिष्य परम्परा में प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द हुए। रामानन्द अपने पाण्डित्म एवं औदार्य के कारण सबसे अधिक विख्यात हुए। स्वामी रामानन्द का संबध दो प्रकार के भक्तों से बताया जाता है एक तो वे जो निर्गुण भाव से राम के उपासक थे, दूसरे वे जो राम की उपासना अवतार रूप में करते थे। इन दोनों प्रकार के भक्तों में प्रमुख समानता केवल राम नाम की थी। कहा जाता है कि ''भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द। परगट किया कबीर ने सप्तदीप नवखण्ड।।''

भक्ति आंदोलन का सामाजिक महत्व –

के. दामोदरन के अनुसार ''भक्ति आन्दोलन का मूल आधार भगवान विष्णु अथवा उनके अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति थी किन्तु यह अशुद्धता एक धार्मिक आन्दोलन नहीं था। वैष्णव के सिद्धांत मूलतः उस समय व्याप्त सामाजिक – आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थी। सामाजिक विषय वस्तु में ये जाति प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरूद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे। व्यापारियों और सामंती अवशोषण का मुकाबला करने के लिए इस आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त करते थे यह सिद्धांत ईश्वर के सामने मनुष्य – फिर वे ऊंची जाति के हों या नीची जाति के – समान हैं।इस आन्दोलन का केन्द्र बन गया जिसने पुरोहित वर्ग और जाति प्रथा के आतंक के विरूद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारो ओर एकजुट किया। '' भक्ति आन्दोलन उस समय आरंभ हुआ था जब हिन्दू और मुसलमान पुरोहितों और उनके द्वारा समर्थित और समृद्ध किए गए निहित स्वार्थों के खिलाफ संघर्ष एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समस्त जनता की एकता पर जोर दिया जाना ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुरूप था समय की मांग थी कि जाति –पाति और धर्मों के भेदभाव पर आधारित तुच्छ सामाजिक विभाजनों का जो घरेलु बाजार का विकास और उसके परिणाम स्वरूप आर्थिक संबंधों में होने वाले परिवर्तनों के कारण एकदम निर्थक हो गए थे। अंत किया जाए भक्ति आन्दोलन इतना व्यापक और मानवीय था कि इसमें हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी आए। ईस्लाम ऐकेश्वरवादी हैं किन्तु सूफी संतों ने अनहलक अर्थात् मैं ब्रम्हा हूं की घोषणा की यह बात अद्वैतवाद से मिलती जुलती है। सूफी साधना के अनुसार मनुष्य के चार विभाग हैं 1. नफ्स (इंद्रीय) 2. अक्ल (बुद्धि या माया) 3. कल्ब (हृदय) 4. रूह (आत्मा) यह साधना नफ्स और अक्ल को दबाकर कल्ब की साधना से रूह की प्राप्ति पर बल देती है। भक्ति आन्दोलन का साहित्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल में भक्ति की दोनों धाराओं में साहित्य लिखा गया। जिसे निर्गुण काव्य और सगुण काव्य कहते हैं, दोनों काव्य की दो –दो धाराएं हैं निर्गुण काव्य की धाराए है – ज्ञानश्रयी शाखा (प्रमुख कवि कबीर, रैदास, गुरूनानक, दादू दयाल,रज्जब) और प्रेमाश्रयी शाखा या सूफी काव्य (प्रमुख कवि कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन) सगुण काव्य उपधाराएं है – रामभक्ति शाखा (प्रमुख कवि तुलसी दास, नाभा दास) , कृष्णभक्ति शाखा – (प्रमुख कवि सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, मीराबाई, रसखान आदि)

भक्ति आन्दोलन एवं लोक जागरण

भक्ति आंदोलन –

मध्यकालीन धर्मों में हिन्दू ,मुस्लिम, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई प्रमुख थे जिनका सम्पर्क – द्वार उन्मुक्त था। लोक – विश्वासों पर आधारित लोक –धर्म की निष्ठा किसी धर्मविशेष के प्रति न थी। आदिवासियों का धर्म अधिकतर उन्हीं तक सीमित था परन्तु सम्पर्क द्वारा वे परस्पर न्यूनाधिक रूप में अनुप्राणित होते रहते थे और जाने –अनजाने एक–दूसरे का अनुकरण करने में भी हिचकते न थे। फिर भी उन दिनों हिन्दू –ईस्लाम दो ही प्रधान धर्म थे। सिक्खों के देवी –देवता प्राय हिन्दुओं के ही थे पर उनकी आचार पद्धति पर आगे चलकर सैनिक वृत्ति की छाप पड़ी । जैन धर्म का प्रचार जहां पश्चिम दक्षिण के क्षेत्रों में अधिक था, वहां बौद्ध धर्म पूर्वी प्रान्तों में ही सिमटकर रहा गया था। पारसी मत 1921ई. में भारत में अपना पहला कदमरख चुका था। लगभग इसी समय इस्लाम धर्म व्यापारियों के माध्यम से मालाबार पहुंचा था। यहूदी ईसाईयों से पहले आ गए थे और ईसाई धर्म फादर टॉमस द्वारा दक्षिण में प्रवेश पा चुका था, जिसका प्रचार कार्य परवर्ती काल में प्रारंभ हुआ। प्रायः सभी धर्मों में युगानुरूप परिस्थिति के अनुसार ग्रन्थों सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों तक ही सृष्टि होने लगी, जिनका मुख्य उद्देश्य आत्मनिरीक्षण और परिस्थिति – परीक्षण द्वारा आवश्यक सुधार करके परम्परागत आचार –विचारों को किसी न किसी रूप में प्रश्रय देकर उन्हें जीवित रखना था। इस प्रयास में वैष्णव धर्म ने भागवत–सम्प्रदाय के रूप में नेतृत्व किया और व्यापक प्रकाश डाला जिसके माध्यम में भक्ति –आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। उसके अनुकरण में अन्य धर्मों ने भी अपनी –अपनी सीमाओं में आवश्यक संशोधन – परिवर्द्धन किये। हिन्दू धर्म के अंतर्गत शैव –शाक्त और स्मति और गाणपत्य की गणना की जाती थी।

शैव धर्म के अंतर्गत मध्यकाल में पाशुपत , वीरशैव, लिंगायत और कश्मीरी शैव सम्प्रदाय विख्यात थे और इसके उप –सम्प्रदायों तक का गठन होने लगा था। ऐसे ही उप सम्प्रदायों में 'नाथ योगी सम्प्रदाय' की गणना भी की जाती है। इसके उन्नायकों ने अपने प्रचार का माध्यम देशी भाषाओं को बनाया और यह इन्हीं की एकान्त विशेषता न थी । वैष्णव – धर्मानुयायी स्वामी रामानन्द और उनके अनुयायियों में भी लोक प्रचलित भावनाओं का आश्रय लेकर उन्हें प्रश्रय दिया।

वैष्णव धर्म मूलतः भक्ति प्रधान है, जो योग – साधना का परवर्ती होने के कारण उससे यत्किचित् प्रभावित भी कहला सकता है। पांचरात्र के माध्यम से तंत्र – साधना के तत्व भी किसी न किसी रूप में इसमें समाविष्ट है। पांचरात्र – मत पर ही मूर्ति –विधान और मंदिर निर्माण की व्यवस्था मुख्यतः आधारित थी। वैष्णव धर्म सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों की सृष्टि प्रधानतः इनके आचार्यों अथवा प्रवर्तकों द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने के कारण हुई थी। द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, भेदाभेद, शुद्धाद्वैत आदि इन्हीं के परिणाम थे।

शाक्त धर्म में भी दक्षिणमार्गी और वाममार्गी नाम दो श्रेणियां बन गयी। कबीर ने वाममार्गी शाक्तों के प्रति विरति और अनास्था प्रकट की है, जो बहुधा अनाचार तक में लिप्त हो जाया करते थे। हिन्दू धर्म की सुव्यवस्थित करने के लिए शंकराचार्य ने स्मार्त सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें पंचदेवोपासना की व्यवस्था की गयी। आगे चलकर इसमें अंधविश्वास ने स्थान पा लिया, जिससे भक्ति का मूल रूप धूमिल पड़ गया। मध्यकाल में उक्त दोनों धर्मों में पुराणपन्थी परम्पराओं के प्रति असंतोष बढ़ले लगा। फलस्वरूप ह्यसोन्मुख प्रवृतियों की बाढ़ को रोकने के लिए सुधारवादी आन्दोलनों का तोता –सा लग गया। उदाहरणार्थ बौद्ध धर्म की महायान–शाखा में विभिन्न यानों की वृद्धि होती गयी। मन्त्रायान, वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान जैसे उप सम्प्रदाय इसी के परिणाम हैं।

भक्ति आन्दोलन के बारे में विद्वानों के विचार

बालकृष्ण भट्ट –

बालकृष्ण भट्ट के लिए भक्तिकाल की उपयोगिता –अनुपयोगिता का प्रश्न मुस्लिम चुनौती का सामना करने से सीधे–सीधे जुड़ गया था। इस दृष्टिकोण के कारण भट्ट जी ने मध्यकाल के भक्त कवियों का काफी कठोरता से विरोध किया और उन्हें हिन्दुओं को कमजोर करने का जिम्मेदार भी ठहराया। भट्ट जी ने मीराबाई व सूरदास जैसे महान कवियों पर हिन्दू जाति के पौरूष पराक्रम को कमजोर करने का आरोप मढ़ दिया। उनके मुताबिक समूचा भक्तिकाल मुस्लिम चुनौति के समक्ष हिन्दुओं में मुल्की जोश जगाने में नाकाम रहा। भक्त कवियों के गाये भजनों ने हिन्दूओं के पौरूष और बल को खत्म कर दियज्ञं

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भक्ति को पराजित– असफल एवं निराश मनोवृत्ति की देन माना था। अनेक अन्य विद्वानों ने इस मत का समर्थन किया जैसे – बाबू गुलाब राय आदि। डॉ. रामकुमार वर्मा का मत भी यही है – ''मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिन्दुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी। इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी –

इन्होंने सर्वप्रथम इस मत का खंडन किया तथा प्राचीनकाल से से भक्ति प्रवाह का संबंध स्थापित करते हुए अपने मत को स्पष्टतः प्रतिपादित किया। उन्होंने लिखा – ''यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मन्दिर तोड़ रहे थे तो उसी समय उपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की धारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में , फिर उसे उत्तर भारतमें प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।''

लोक जागरण –

19वीं शताब्दी के दौरान सम्पूर्ण भारत में एक नयी बौद्धिक चेतना और सांस्कृतिक उथल–पुथल दृष्टिगोचन होता है। इस काल में पूरे देश में मानवतावादी जीवन दृष्टि, विवेक की केंद्रीयता एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान का प्रसार हुआ। आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और विदेशी शक्ति के हाथों पराजित होने की स्थिति ने नई जागृति पैदा की। इस नयी जागृति के परिणाम स्वरूप अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक दुर्बलताओ को लेकर नये सिरे से चिंतन आरंभ हुआ। 19वीं सदी के भारत में जिस नवीन चेतना का उदय हो रहा था।

प्रसिद्ध इतिहासकार विपिन चन्द्रा के अनुसार – ''ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार और उसके साथ औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा के प्रचार –प्रसार की प्रतिक्रिया में ही यह लहर उठनी शुरू हुई थी। बाहरी संस्कृति के फैलाव से भारतीयों के लिए यह जरूरी हो गया था कि वह आत्मनिरीक्षण करें। हालांकि औपनिवेशिक संस्कृति के खिलाफ यह प्रतिक्रिया हर जगह और हर समाज में में अलग –अलग तरह की हुई, लेकिन यह बात हर जगह शिद्दत के साथ महसूस की गयी कि सामाजिक धार्मिक जीवन में सुधार अब जरूरी हो गया है। सुधार की इस प्रक्रिया को आमतौर पर नवजागरण कहा जाता है।''

लोक जागरण के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर गहरा पड़ा। उन्होंने हिन्दी साहित्य को नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया, उनके संस्कार को महत्ता को सब लोगों ने मुक्त–कण्ठ स्वीकार किया और वे हिन्दी गद्य के प्रवर्तक माने गए।यदि हम तत्कालीन स्थिति पर विचार करें तो यह बात समझ में आती है कि भारत में अंग्रेजी राज स्थापित होने के अंग्रेजों की कोशिश यह रही थी कि हिन्दू–मुस्लिम एक न हो पाएं, के लिए उन्होंने हर अच्छे –बुरे तरी का सहारा लिया। इस संदर्भ में उन्होंने साहित्य का भी सहारा लिया और उर्दू को अदालती भाषा घोषित की। संवत् 1909 के आसपास हिन्दी और उर्दू दोनों का रहना आवश्यक समझा था वहीं आगे सर सैयद अहमद खां के प्रभाव के कारण हिन्दी के बारे में कहते हैं कि इस वक्त हिन्दी की हैसियत भी एक बोली (डायलेक्ट) सी बन गई है, जो हर गांव से अलग –अलग ढंग से बोली जाती है।

लोक जागरण में दो बातें हमें मुखरित रूप से दिखाई देती है। राष्ट्रीयधारा साम्राज्यवाद का विरोध और इसे उठाने में सिर्फ भारतेन्दू ही नजर नहीं आते बल्कि मंत्री सदासुखलाल, लल्लू लाल, सदल मिश्र, राजा लक्ष्मण सिंह, पं. प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, बालकृष्ण भट्ट आदि कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्होंने लोक जागरण के क्षेत्र को परमार्जित किया।भारतीय आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सबसे पहले दर्शन, धर्म व संस्कृति के क्षेत्रों में हुई ओर राजनीतिक आत्म चेतना का उदय उसके परिहार्य अतीत को पुनर्जीवित करने की प्रवृत्ति अधिक थी। भारतीय पुनर्जागरण के नेतृत्वकर्ताओं ने खुले रूप में इस बात को रखा कि हमें अपने प्राचीन धर्म शास्त्र वेदों, उपनिषदों, गीता, पुराणों आदि के आधार पर अपने वर्तमान जीवन को डालना चाहिए। अतीत को पुनर्जीवित करने

की यह भावना आक्रमक तथा अहंकारपूर्ण विदेशी सभ्यता को महान चुनौती के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई थी। पश्चिम की आंतरिक सभ्यता तथा भारत की धार्मिक संस्कृतियों के बीच इस संघर्ष से नए भारत का उदय हुआ।

लोक जागरण (पुनर्जागरण) का उद्‌भव एवं विकास –

लोकजागरण का उद्‌भव एवं विकास सबसे पहले बंगाल में हुआ। राजाराममोहन राय इसके पहले पुरोधा माने जाते हैं। लोग सबसे पहले पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आए क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना व्यापार सबसे पहले विश्व में चल रही गतिविधियों से परिचित हुए यहां से होता हुआ जागरण सारे भारत में फैला जिसके फलस्वरूप सारा भारत स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में दीर्घकालीन सुदीर्घ निन्द्रा से जागृत हो उठा। भारत यूरोपीय साहित्य की तुलना से सबसे पहले उन्होंने ही 1886 में हिन्दी प्रदीप में सच्ची कविता शीर्षक से प्रकाशित निबंध का विशेष महत्व है। इससे उन्होंने कविता के बारे में सबसे पहले स्वच्छंदतावादी धारणाएं व्यक्त की हैं , इनके अलावा बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन' का दृश्य रूपक व नाटक शीर्षक लेखमाला, भारतीय नगरी भाषा शीर्षक व्याख्यान तथा भारतेन्दु के नाटक और जातीय संगीत शीर्षक निबंधों में हमें बीज रूप में हिन्दी की सैद्धांतिक समालोचन के दर्शन होते हैं। भक्तिकाल के बाह्य एवं आंतरिक प्रेरणा स्त्रोत के रूप में तात्कालीन परिस्थितियों में लोक जागरण को विशेष रूप दिया गया है। तात्कालीन भक्ति साहित्य को लोक जागरण का काली भी कहा जाता है।

भक्ति आन्दोलन में लोकजागरण का कार्य कबीर ने भी उन्होंने भक्ति के लिए लोगों में जागरण पैदा किया तथा जाति –प्रथा, वर्ण–भेद पर पुरजोर विरोध किया और उनमें जागरण की भावना स्थापित किया –

''जाति– पाति पूछे नहीं कोई
हरि को भजै सो हरि का होई।''

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः यह है कि भारतीय इतिहास में मध्यकाल राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सभी दृष्टि से महत्वपूर्ण था। एक ओर जहां इस्लामी संस्कृति भारतीय समाजिक संरचना को प्रभावित कर रही थी तो वहीं इसकी पृष्ठभूमि में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात भी होता है। साहित्येतिहास में इसे स्वर्णिम काल की संज्ञा दी गई है। ''भक्ति आन्दोलन ने समय –समय पर लगभग पूरे देश को प्रभावित किया और उसका धार्मिक सिद्धांतों , अनुष्ठानों , नैतिक मूल्यों और लोकप्रिय विश्वासों पर ही नहीं , बल्कि कलाओं और संस्कृति पर भी निर्णायक प्रभाव पड़ा।''

उत्तरी भारत में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी में फैली भक्ति आन्दोलन की लहर समाज के वर्ण, जाति, कुल और धर्म की परिसीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण जनमानस की चेतना में व्याप्त हो गयी थी। जिसने एक जन आन्दोलन में साधक या भक्त के द्वारा मोक्ष प्राप्ति अथवा आत्म –साक्षात्कार के लिए परमात्मा के सगुण या निर्गुण रूप की भक्ति ही नहीं की गई वरन् भक्ति के माध्यम से तदयुगीन सामाजिक जीवन में स्थित एक वर्ण या जाति के प्रति किए गए अत्याचार, अन्याय और शोषण के खिलाफ असहमति और विरोध का प्रदर्शन था। साथ ही उसने जन सामान्य की आशाओं, आकांक्षाओं और आदर्शों की भी अभिव्यक्ति हुई थी।''

यह माना जा सकता है कि प्रत्येक युग का साहित्य परिस्थितियों की उपज होता है और मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन को तीव्र और गतिशील बनाने में इन परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परन्तु मूलतः वह भारतीयता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हिन्दी भक्ति को सच्चे परिक्षेत्र में समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी पूर्ववर्ती विचारधारा और धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया जाए। भाषा विचार दोनों दृष्टि से सम्पूर्ण धार्मिक आन्दोलन लोकोन्मुख हो रहा था। संस्कृत का स्थान जन भाषाएं ले रही थी, जिसमें शस्त्र निरपेक्ष उग्र विचारधारा का स्वर सुनाई पड़ रहा था।यह वर्ण व्यवस्था में पिसती ऊंच–नीच की भेद भावना से कराहती तथाकथित अपृश्य समझी जाने वाली जाति का आन्दोलन है, जो वर्ग वैषम्य के अन्यायपूर्ण जूते को उतार फेंकने के लिए व्याकुल हो रही थी।

भक्तिकाल के पथ प्रदर्शकों ने अपने युग काल के सभी सामाजिक वर्गों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगाए –

''दादू सो मोमिन मोम दिल होई।
साई कुं पहिचाने साई।।
जोर न करे हराम न खाई।
सो मोमिन भिस्ति में जाई।।''

लोकजागरण में कबीर , तुलसी , जायसी के भक्ति आन्दोलन के द्वारा भक्ति एवं आन्दोलन के लिए निद्रा मे सोये हुए लोगों को जगाया उन्होंने वर्ण, भेद, जाति आदि पर विरोध करते हुए एकमत होकर भक्ति की राह पर लाये। भक्ति आन्दोलन की शुरूआत दक्षिण भारत से किया गया है। भक्ति आन्दोलन में लोकजागरण , सामाजिक– धार्मिक सुधारकों की धारा द्वारा समाज में लाई गई भक्ति आन्दोलन के नेता रामानन्द ने राम को भगवान के रूप में लेकर इसे केंद्रित किया। मुस्लिम शासकों के बर्बर शासन से कुंठत एवं उनके अत्याचारों से ग्रस्त हिन्दू जनता ने ईश्वर की शरण में अपने को अधिक सुरक्षित महसूत कर भक्ति का मार्ग अपनाया। हिन्दू –मुस्लिम के जनता में आपस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क से दोनों के मध्य भेदभाव, सद्‌भाव सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास हुआ इससे भक्ति आन्दोलन में विकास हुआ। सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक का समय भारत में न केवल राजनीतिक सत्ता का विघटन का काल है बल्कि धार्मिक मान्यता और आस्था के स्खलन का काल भी है। लोगों को सामाजिक, रूढ़ियों, भेदभाव आदि

का विरोध करते हुए जागरण स्थापित कर भक्ति का मार्ग दिखाया गया। धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में जागरण तथा भक्ति आन्दोलन आवश्यक रहा। लोक जागरण का काव्य है – जनता के ह्रदय की वाणी है। उपरोक्त बातों से साफ जाहिर है कि भक्ति आन्दोलन ने पूरे सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को हिला कर रख दिया। इस आन्दोलन में हर तबके के लोगों ने भाग लिया और व्यापारिक गतिविधियों में इस पूरे भारत में फैलने में मदद की। इस आन्दोलन ने समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था को काफी नुकसान पहुंचाया एवं लोगों को सामान्तवादी व्यवस्था से लड़ने में हिम्मत प्रदान की। इसने एक साथ भारत में नवजागरण का काम किया।

सन्दर्भ सूची

1.	हिन्दी साहित्य का इतिहास , भाषा संस्कृति और चिंतन	–	डॉ. सुशील त्रिवदी (संयोजक) बाबूलाल शुक्ल
2.	हिन्दी साहित्य	–	डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
3.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	–	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	डॉ. नगेन्द्र
6.	लोक जागरण और हिन्दी साहित्य	–	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सम्पादक– रामविलास शर्मा
7.	राजपाल हिन्दी शब्दकोश	–	डॉ. हरदेव बाहरी
8.	आदर्श हिन्दी शब्दकोश	–	आर.सी. पाठक
9.	हिन्दी साहित्य का प्राचीन इतिहास	–	डॉ. राजेश श्रीवास्तव 'शम्बर'

———